अमृतलाल नागर का जीवन परिचय

अमृतलाल नागर का जन्म 17 अगस्त 1916 को गोकुलपुरा आगरा उत्तर प्रदेश में हुआ । इनकी मृत्यु 13 फरवरी 1990 को हई। अमृत लाल नागर जी की पढ़ाई हाई स्कूल तक ही हुई। उन्होंने स्वाध्याय से ही इतिहास, पुराण पुरातत्व, समाजशास्त्र आदि का अध्ययन किया। नागर जी को हिंदी, गुजराती, मराठी, बंगला, अंग्रेजी, आदि भाषाओं का भी ज्ञान था। इन्होंने स्वतंत्र लेखन करके साहित्य की सेवा की। सन् 1940 से 1947 इन्होंने फिल्म लेखन का काम किया। सन् 53-56 कत यह आकाशवाणी लखनऊ में काम किए। 'मानस का हंस' उपन्यास पर इन्हें उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा 1973-74 का राज्य साहित्य पुरस्कार प्राप्त हुआ। अमृत और विष उपन्यास पर 1967 में इन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ। इन्हें भारत भारती सम्मान से भी सम्मानित किया गया। 1981 में इन पद्म विभूषण सम्मान से सम्मानित किया गया। नागर जी ने में मेघराज इन्द्र एवं तस्लीम लखनवी के नाम से भी लेखन किया।

अमृतलाल नागर के उपन्यास

महाकाल सन -1947 (1970 में भूख नाम से प्रकाशित हुआ)। बूंद और समुद्र - 1956। शतरंज की मोहरे -1961। सुहाग नुपुर - 1960 । अमृत और विष - 1966 । सात घूंघट वाला मुखड़ा - 1968। एकता नेमीसारण्ये - 1972 । मानस का हंस - 1972 । नाच्यौ बहुत गोपाल - 1978 । खंजन नयनी - 1981। बिखरे तिनके - 1982 । अग्निगर्भा 1983 । करवट - 1985।

'मानस का हंस' (अमृतलाल नागर)

मानस का अर्थ है - मनोभाव, मन से उत्पन्न संकल्प या मन के द्वारा और हंस का अर्थ है - आत्मा, अलौकिक गुणों से संपन्न मनुष्य, यानी एक प्रकार का सन्यासी जो माया से निर्लिप्त हो, शुद्ध आत्मा हो। रामचरितमानस की आत्मा तुलसीदास हैं। ऐसा व्यक्ति जो अलौकिक गुणों से संपन्न है। वह तुलसीदास है। ऐसा मनोभाव जो शुद्ध अलौकिक मनोभाव लिए हुए हो। वह तो केवल तुलसीदास ही है। जो एक प्रकार के सन्यासी हैं, माया से निर्लिप्त हैं, बहुत ही शुद्ध आत्मा है, यानी मानस का हंस तुलसीदास जी है।

उपन्यास में तुलसीदास के जन्म से लेकर मृत्यु तक का जो जीवन चरित्र प्रस्तुत हुआ है वह इतना सजीव, तर्कसंगत और सु संबंध है कि कदाचित ऐतिहासिक तथ्य न होते हुए भी वह पूर्णत: यथार्थ बन गया है।

तुलसीदास का विवाह रत्नावली से हुआ था। एक दिन जब तुलसीदास घर से बाहर गए हुए थे तब रत्नावली के भाई और पिता उनसे मिलने हैं आए और रत्नावली उनके साथ अपने मायके चली गई। तुलसीदास को जब घर लौटने पर यह बात पता चली तो उन्हें बहुत बुरा लगा। रत्नावली का वियोग सह नहीं सके और उसी रात को जमुना नदी को पार करके उनके घर पहुंच गये। कहते हैं उस दिन जमुना नदी में बाढ़ आई हुई थी जिसे पार कर रत्नावली के पास मध्यरात्रि को पहुंचते हैं। रत्नावली के कमरे तक पहुंचने के लिए जिस रस्सी का सहारा उन्होंने लिया था वास्तव में वह एक सांप था। सांप को रस्सी समझकर रत्नावली के कमरे में पहुंच जाते हैं। और कहते हैं कि उनसे उनका वियोग सहा नहीं गया। रत्नावली को बहुत गुस्सा आया और उसने कई तरह के ताने दिए। उसने ऐसा ताना दिया जिसका तुलसीदास जी के मन पर गहरा आधात लगा। उन्होंने उसी समय घर गृहस्थी को छोड़ देने का निश्चय किया। रत्नावली ने कहा था कि अगर इतना प्रेम मुझसे ना करके प्रभु राम से करते तो तुम्हारे जीवन की नैया पार लग चुकी होती। तुलसीदास वहां से मध्य रात्रि को ही निकल पड़ते हैं और फिर पीछे मुड़कर उन्होंने कभी नहीं देखा उनको तभी अज्ञात हुआ कि वह सांसारिक कर्मों में लिप्त होकर अपने जीवन को नष्ट कर रहे हैं। वहाँ से निकलकर काशी पहुंचते हैं, और गहन अध्ययन में डूब जाते हैं। तदुपरांत 'रामचरितमानस' जैसे महाकाव्य लिखते हैं।

मानस का हंस उपन्यास साल 1972 में प्रकाशित हुई थी। यह लखनवी अंदाज में लिखा हुआ उपन्यास है। यह उपन्यास गोस्वामी तुलसीदास जी के जीवन पर आधारित है। उपन्यास का प्रारंभ बाबा तुलसीदास की पत्नी रत्नावली की मृत्यु के प्रसंग से होता है। तुलसीदास ने रत्नावली से वादा किया था कि वे उसकी मृत्यु से पहले उनसे मिलने अवश्यआएंगे। तो तुलसीदास अचानक उस गांव में पहुँच जाते हैं जहां रत्नावली रह रही थी। यानी कि अपने वादे को पूरा करते हैं। अमृतलाल

नागर जी ने तुलसीदास जी के जीवन को तात्कालिक राजकीय संस्कृति के परिवेश में समाज की गतिविधियों के साथ चित्रित किया है। उस समय जब यह उपन्यास लिखा गया तो तुलसीदास के आसपास का जो परिवेश था उसका चित्रण किया गया है। यह उपन्यास फ्लैश बैक के माध्यम से आगे बढ़ता है। उपन्यास में अकबर के शासन काल को भी चित्रित किया गया है। उपन्यास के प्रारंभ में ही उस समय की राजनीतिक स्थिति का अराजकता का चित्र देखने को मिल जाता है। उपन्यास के मध्य में अयोध्या में राम जन्म स्थान के ध्वंस तथा उस स्थान पर मस्जिद के निर्माण की घटना भी देखने को मिलती है। इस समय उपन्यास मे यह भी चित्रित किया गया है कि साधारण स्त्रियाँ थी उनको मुस्लिम शासक किस प्रकार से लूट खशोट कर ले जाते थे। और उनका शोषण किया करते थे। इतना ही नहीं उस समय में राज घराने की औरतों को भी लूट का सामन समझकर ख़रीदा बेचा जाता था। मुस्लिम शासक कट्टर और सांप्रदायिक थे। उस समय भी सत्ता को पाने के लिए भाई भाई का, पिता पुत्र का बध कर देते थे। बटेश्वर मिश्र के उकसाने पर काशी के कोतवाल ने कुछ तांत्रिकों के साथ निरपराध साधु संतों को भी बंदी बना लिया था। इसमें एक तुलसीदास भी थे। जात पात का भेद भाव भी बहुत बहुत अधिक था। एक चमार को जब तुलसीदास ने भोजन करवाया है तो सारा ब्रहम वर्ग उनके ब्राह्मणत्व पर संशय करने लगे। अकाल का बहुत ही मार्मिक चित्रण उपन्यास में किया गया है। यह उपन्यास केवल तुलसीदास की जीवनी ही नहीं वल्कि उस समय का सांस्कृतिक, इतिहास इसमें हमें देखने को मिलता है साथ ही सामाजिक धार्मिक स्थिति का वास्तविक स्वक हम इस उपन्यास में देख सकते हैं। इस उपन्यास में नागर जी ने धार्मिक, सांप्रदायिक, जातिवाद का वर्णन जरूर किया है लेकिन इस से ऊपर उठकर इसमें मानवतावादी दृष्टि देखने को मिलती है। नागर जी तुलसीदास के जीवन को माध्यम बनाकर एक महान रचनाकार की विशेषता बताई है। वही रचनाकार महान होता है जो अपने को साधारण जन की वेदना से जोड़ता है।

रामचरितमानस की रचना के बाद जब तुलसीदास काशी में रह रहे थे तब रत्नावली काशी आती है और तुलसीदास के पास रहने की अनुमति मांगती है। किंतु लोक धर्म की रक्षा के लिए कुछ दिन बाद ही रत्नावली को इस वादे के साथ वापस भेजते हैं। कि वे रत्नावली से उसकी मृत्यु से पहले अवश्य मिलने आएंगे और अपना वचन पूरा भी करते हैं। जीस समय रत्नावली अपने जीवन की अंतिम सांसे गिन रही थी उस समय तुलसीदास उनसे मिलने के लिए राजापुर पहुंच जाते हैं। यद्यपि इससे पहले उन्हें किसी प्रकार की रत्नावली की अवस्था के बारे में पूर्व सूचना नहीं मिलती। परंतु तुलसीदास को यह आभास होता है कि उसे वहां जाना चाहिए और तुलसीदास रत्नावली से मिलने राजापुर पहुंच जाते हैं। उपन्यास की पूरी कथा वस्तु इसी राजापुर में चलती है। यहीं से उपन्यास का कलेवर आरंभ होता है और सारे पात्रों का आगमन आरंभ होता है।

उपन्यास के पात्र :- मैना कारिन। बतासो, रत्ना, श्याम की बुआ, बाबा तुलसीदास, राजा (रजिया नाम से पुकारे जाने वाले पात्र, बाबा से आयु में एक छोटे)

संत बेनी माधव (शुकर निवासी, तुलसीदास के शिष्य 50-55 का आयु), राम द्विवेदी (काशी से आए हुए शिष्य 21 वर्षीय) बकरीदी कक्का (बाबा से आयु में 4 दिन बड़े हैं), पंडित गंगा पति उपाध्याय (बाबा के पुराने शिष्य 68-69 वर्षीय) बूढ़ा रमजानी (बकरीद दर्जी का छोटा बेटा), शिवम दुबे, नन्हकु, मनकु (गांव के लोग) हुलसिया (पंडिताइन की बोली ननद), पंडिताई, पंडित आत्माराम और भैरो सिंह।

बाबा तुलसीदास जब राजापुर पहुंचते हैं और रत्नावली को मृत्यु शैया पर देखते हैं तो उन्हें अचानक रत्नावली से किया हुआ वादा याद आता है। वे पुरानी यादों में खो जाते हैं यहीं से उपन्यास की कथा का फ्लैश बैक माध्यम से आरंभ होता है। बाबा तुलसीदास काशी में है और कथा आगे बढ़ती है।

उपन्यास का आरंभ

गोस्वामी जी लोलार्क कुंड के मठ में भगवान श्री कृष्ण की आरती करते हुए कृष्ण भक्ति का एक पद गा रहे हैं। मठ के आंगन में संभ्रांत भक्तों की भीड़ है। सभी उनके भजन पर मुग्ध हैं। आरती के बाद दर्शनार्थियों के द्वारा यह पूछे जाने पर कि बाबा तो राम के भक्त हैं, तो वे कृष्ण की गुणगान क्यों कर रहे हैं? बाबा उन्हें कृष्ण भक्ति का महत्व बताते हुए कहते हैं कि उनका सभी अवतारों के प्रति श्रद्धा है..... "जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरत देखी तिन तैसी" वाली अपनी चौपाई का भाव अपने प्रवचन में निरूपित करते हैं। शिव का गुणगान भी करते हैं और लोगों को समझाते हैं कि जैसे चुटकी में डोर सधी होने पर पतंग को आकाश में चाहे कहीं भी बिचरे कोई बाधा नहीं पहुंचती। वैसे ही अपने इष्ट से सद्भाव की डोर में बंधी हुई मन

पतंग को सारे आकाश में उड़ा सब देवों के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित करो तो तुम्हारा भी सर्वव्यापी और सर्वसामर्थनवान के रूप में अपने आप को प्रकट करेगा। भक्त उनकी बातों को सुनकर संतुष्ट होते हैं और वहां से चले जाते हैं। उनके चले जाने पर बाबा अपने प्रवचन पर स्वयं विचार करते हैं और कहते हैं हे राम जी मैंने सब कुछ किया और कर रहा हूँ। वेद, पुराण, शास्त्र और संतों की वाणी में आपको पाने के लिए जो जो साधन बतलाए गए हैं, वह सब मैं बड़ी ललक के साथ करता हूँ, फिर भी आप मुझे प्रत्यक्ष दर्शन क्यों नहीं देते। मेरे ध्यान में जैसे कभी-कभी हनुमान जी प्रकट हो जाते हैं, वैसे आप क्यों नहीं आते। मैं प्रीति तो बढ़ाना चलता हूँ पर प्रीति क्यों नहीं होती। तुलसीदास अपने आप में उदास थे। अपने दुख में जीवन के सारे क्षण संताप के झरने में दृश्याधार बनकर तेजी से उतरते गए और उनके सामने संताप को अधिक गहरा कर दिया। इसी समय एक शिष्य बाबा से पूछने आता है कि आज भगवान के भोग के लिए भोजन में कौन-कौन से व्यंजन बनेंगे। यह प्रश्न गोस्वामी जी को और अधिक खिन्न बना देता है। उन्होंने कहा जो भगवान को रूचता हो वही बनवाओ। शिष्य कुछ खिन्न हो कर चला गया। दालान में मंदिर की चौखट का टेका लगाकर राधा-मुरलीधर की मूर्तियां निहारने लगे, हे कृष्ण रूप राम जी मेरा मन अभी सधा भी नहीं था कि आपने मुझे इस वैभव की भट्टी में डालकर और अधिक तपाना आरंभ कर दिया है। हे हरि, मुझ दिन दुर्बल की इतनी कठिन परीक्षा आप क्यों ले रहे हैं? एक ओर तो दुनिया मुझे महामुनि और दूसरी ओर कपटी-कुचाली कहती है। केशव यह दोनों परस्पर विरोधी विशेषताएं तो मुझ में कदापि नहीं हो सकती। तुलसीदास कहते हैं कि मैं अति अधम प्राणी हूँ तभी आप मुझे अपनी प्रतीति नहीं देते। मुझे एक बार भरोसा दिला दो राम जी। एक बार यह कक्ष तुम्हारे आश्वासन-भरे शब्द से गूंज उठे, तुम कह दो कि तुलसी तू मेरा है, तो बस फिर मुझे कुछ नहीं चाहिए। मुझे केवल आपका भरोसा आप का सानिध्य चाहिए। इस परीक्षा प्रतीक्षा में की भगवान आप अवश्य बोलेंगे। भोले भावुक गोस्वामी जी जुगल मूर्ति की ओर टकटकी लगाकर भिखारी जैसी दिन मुद्रा में देखने लगे।

इसी क्षण विक्रमपुर से राजा भगत पधारते हैं। उनका नाम सुनते ही तुलसीदास का उदास भाव तिरोहित हो गय प्रसन्न और उत्साहित होकर बोले कहां है राजा। कहकर वे मंदिर वाले दालान से बाहर आए और आंगन पार करते हुए फाटक की ओर तेजी से बढ़ चले। देहली की चौखट पर पैर रखते ही उत्साह ठिठक गया। राजा तो सामने थे ही रत्नावली भी थी। उसका तपोपूत मुख पहले से अधिक दिव्य लग रहा था। रत्नावली ने एक बार पति की आंखों से आंखें मिलाई। राजा भगत दाढ़ी-केश विहीन तुलसीदास के नए रूप को चकित दृष्टि से देखते हुए हाथ फैला कर आगे बढ़े ....."अरे भैया तुम तो एकदम बदल गए।" परंतु तुलसीदास का उत्साह अब ठंडा पड़ चुका था। औपचारिक आलिंगन करके तुरंत अपने आप को मुक्त कर लिया। रत्नावली का यहां आना तुलसीदास को अच्छा नहीं लगा। किंचित रूखे स्वर में पूछा ....."इन्हें क्यों लाए?" रत्नावली तब तक तेजी से आगे बढ़ कर उनके पैरों में गिर चुकी थी। तुलसीदास ने अपने पैरों पर रत्नावली के उंगलियों का स्पर्श अनुभव किया। उस स्पर्श में इतनी तृप्ति थी कि पल भर के लिए मन से राम विसर गए। रोष ठहर न पाया। मृदुल स्वर में राजा से कहा ....."भीतर चलो विश्राम करो फिर बातें होंगी।" (शिष्य की ओर देखकर) प्रमुदत्त!" अपनी माता जी को ऊपर कक्ष में पहुंचा दो। भगत जी के रहने की व्यवस्था मेरी बगल वाली कोठरी में करो। माताजी यदि गंगा स्नान के लिए जाना चाहे तो किसी को उनके साथ भेज दो। रत्नावली जी के चेहरे पर पति के इन शब्दों ने संतोष की आभा प्रदान कर दी। नहा-धोकर रत्नावली मठ में लौट आई। राजा भगत गंगा जी से ही अपने एक काशी स्थित नातेदार हिरदै अहीर से मिलने के लिए चले गए। मठ के सारे शिष्यों और सेवकों को तब तक मालूम हो चुका था कि गोस्वामी जी की पत्नी आई है। सभी उनके प्रति आदर प्रकट कर रहे थे। एक बार तुलसीदास ने किसी भृत्य से 'माता जी' के संबंध में पूछा तो पता चला कि वह रसोई घर में रसोइए को सहायता दे रही हैं। तुलसीदास के मन पर संतोष के भाव ने छाना चाहा पर छा ना सका, लेकिन किसी प्रकार का असंतोष भी मन में न जागा। वे भागवत बाँचते रहे।

भोजन के समय रसोई में वर्षों पूर्व नित्य मिलने वाला स्वाद आज फिर मिला। संतोष हुआ। राजा से उन्होंने गांव-जवार में सबकी खैर-खबर पूछी। अपने रामायण रचने की बात, अयोध्या, मिथिला और सीतामढ़ी आदि यात्राओं की चर्चा भी उनसे की। पर रत्नावली के संबंध में एक शब्द भी न पूछा। दूसरे दिन टोडर आए । तुलसीदास ने उनसे राजा भगत का परिचय कराया और पत्नी के आने की सूचना भी दी। तुलसीदास बोले..... "गंगाराम को इस बात की सूचना दे देना। हम चाहेंगे कि रत्ना देवी हमारे बाल मित्र की धर्मपत्नी के प्रति अपना आदर प्रकट करने जाएँ। टोडर उल्लसित स्वर में बोले ....."हाँ हाँ वहां जाएँगी और मेरे यहाँ भी पधारेंगे। जिस दिन गठजोड़े से महात्मा जी की जूठन गिरने का सौभाग्य मेरे घर को मिलेगा, उस दिन मेरा जन्म सार्थक हो जाएगा।"

दो-चार दिन बीत गए। इस बीच में तुलसी और रत्ना का आमना-सामना एक बार भी न हुआ। तुलसी कहते थे कि उन्हें हिरते-फिरते रत्नावली की सूरत देखने का मौका मिल जाए पर रत्नावली ने सतर्कता पूर्वक अपने आप को उनकी दृष्टि से बचाया। हाँ भोजन के समय उन्हें अपनी थाली में हर व्यंजन में रत्नावली का हाथ का स्पर्श मालूम पड़ता था। वे थाली के सामने बैठ कर बार-बार रत्नावली की छवि के साथ अपने मन में बंध जाते थे। पंडित गंगाराम के यहां सूचना पहुंची तो रत्नावली को लिवा जाने के लिए तुरंत उनके यहां से पालकी आ गई। रत्नावली प्रह्लाद घाट गई तो भोजन का वह स्वाद भी चला गया। रात के समय वह और राजा बैठे हुए धर्म चर्चा कर रहे थे। रसोईया दो गिलासों में दूध लेकर आया। तुलसीदास बोले ....."अरे भाई गोसाई क्या बना हूँ कि आठों पहर तर माल चाभते चाभते दुखी हो गया हूँ।" एक घूंट पिया, मलाई चाभते हुए मुंह बनाया, फिर मुस्कुराए, कहा ....."वाह रे राम जी कहाँ तो एक वह दिन था कि कटोरी-भर छाछ पाने के लिए ही मैं तरसता था और कहाँ अब इस सोंधे दूध की मलाई को खाते भी खुनस लगती है।" राजा बोले ....."काहे खुनसाते हो भैया! तुम्हारी जिभ्या से भगवान जी स्वाद लेते हैं। गोसाइयों में हमें यही बात तो अच्छी लगती है कि गोसाईं लोग दुनिया का हर भोग राजी होकर ग्रहण करते हैं पर अपने स्वाद और सुख को भगवान का मानकर ही चलते हैं। स्वामी जी महाराज चुप रहे दूध पीते रहे बाद में उन्हें राजा के मन का हल्का सा संकेत मिल गया था। उन्होंने तुरंत ही राजा भगत की मनोधारा का मुहाना बंद करने का निश्चय किया, कहा ....."है तो यह ऊँची बात पर खरा गोस्वामी ही इस पानी पर बिना पैर भिगोए चल सकता है। पूर्ण गोस्वामित्व पाने के लिए मैं अभी तक राम जी की ड्योढ़ी का भिखारी हूं।"

राजा तुलसी का पैंतरा समझ गए। उन्होंने भी अपने पक्ष को दृढ़ता से प्रस्तुत करने की ठानी, कहने लगे ....."दो तपसी जब मिल जाते हैं तब दोनों को एक-दूसरे से आगे बढ़ने का हौंसला मिलता है। तुम्हारी तपस्या तो भैया सारा जग देख रहा है पर हम तो भौजी का तप देख-देख कर ही अपने मन को ठिकाने पर ला पाए हैं। इस कलिकाल में ऐसा कठिन जोग साधने वाली जोगिन मैंने नहीं देखी।" तुलसी चुप रहे, रत्नावली की कठिन साधना के प्रति अपने मित्र के यह उद्गार सुनकर उन्हें भला लगा। उन्हें वैसा ही संतोष हुआ जैसा कि अपने संबंध में सुनकर होता है। और यह संतोष जिस तेजी से अपने चरम बिंदु पर पहुँचा उससे ही मन का पर्दा फड़फड़ा कर पलट भी गया। उन्होंने अपने आप को कस लिया। कुछ क्षणों के लिए भूला हुआ रामनाम फिर से घट में गूंजाना आरंभ कर दिया। राजा कह रहे थे ....."गांव में तुलसी रुचि की रसोई बनाती रही और किसी भूखे कांग्ले को खिलाती रही। आप बिना चुपड़ी, बिना साग भाजी से दो रोटी खा कर अपने दिन बिताती हैं। रोज तुम्हारी धोती धोना, तुम्हारी पूजा की सामग्री लगाना, तुम्हारे बैठके में झाड़ू लगाना, तुम्हारी एक-एक चीजों को सहेज संभाल कर रखना, कहाँ तक कहें भैया, भौजी जैसी तपसिन हमने नहीं देखी। तुम घर से निकल गए पर उन्होंने अपनी भक्ति से तुम्हें अभी तक घर में ही बांध रखा है।"

मन का राम शब्द राजा की बातों से उपजे संतोष से बीच-बीच में फिर बिसरने लगा। यहां आने पर रत्नावली की देखी हुई एक झलक उनके मन के दृश्य-पट पर बार-बार आने लगी। परदा दर परदा मन में यह इच्छा भी होने लगी कि एक बार उन्हें फिर देखें, बातें करें। मन की इस गुदगुदाहट से राम शब्द फिर प्रबल हुआ। वे दूध का गिलास रखकर कुल्ला करने के बहाने उठ पड़े। एक मन कह रहा था, चेत! और दूसरा रत्नावली की मनोछवि निहारने में ही अटका हुआ था। कुल्ला करके दोनों जने जब फिर अपनी अपनी चौकियों पर बैठे तो राजा ने कहा ....."सीता जी के बिना राम जी कभी सुखी नहीं रह पाए। तुम से अधिक भला और कौन समझ सकता है। तुमने तो सारी रामायण रच डाली है। जब रावण उन्हें हर ले गया तो भी, और जब उन्होंने उन्हें धोबी की निंदा के कारण वाल्मीकि मुनि के आश्रम में ही भेज दिया तब भी, रामजी सुखी न रह पाए। बायाँ अंग जब कट जाए तब दायाँ भला कैसे सुख पा सकता है। तुलसीदास को यह बातें कहीं पर अच्छी लग रही थी और कहीं वे इस ओर से उचटने का प्रयत्न भी कर रहे थे। थाली का बैंगन कभी इधर लुढ़कत है और कभी उधर। तुलसी ने लेट कर चादर तानने हुए राजा की वग्धारा को आगे बढ़ने से रोकने के लिए कहा ...."अच्छा अब विश्राम करेंगे।" और लेट गए। चद्दर तान ली। करवट बदल ली, राम राम जपना आरंभ कर दिया, पर रत्नावली उसके मन से न हटी। इच्छा होने लगी कि रत्नावली उनके पास आए, उनसे अपना दुख सुख कहे। मैं राम के लिए तड़पता हूँ, वह मेरे लि।ए रामजी कदाचित मुझे इसलिए दर्शन नहीं दे रहे हैं कि मैं रत्नावली से निठूराई बरत रहा हूँ। रख लूं अपने पास! उसे संतोष मिलेगा तो कदाचित रामजी भी मेरे प्रति दयालु हो जाएँगे। तुलसी का मन कभी ऊहापोह में रहता और कभी झटके के साथ उस मोह से अपने को उबाकर राम शब्द में लीन होने का प्रयत्न करता। उन्हें रात में अच्छी नींद न आई। सवेरे पंडित गंगाराम के यहां से न्योता आया, उन्होंने कहला दिया कि वह नहीं आएंगे। टोडर आए तो उन्होंने भी अपना प्रस्ताव दोहराया कहा ....."महात्मा जी आप दोनों ही एक दिन मेरी कुटिया

पर अवश्य पधारेंगे।"

तुलसीदास को लगा कि राम उनकी परीक्षा लेने के लिए यह प्रस्ताव टोडर के मुख से कह रहे हैं। वे बोले...."विरक्त अब फिर से राग के बंधनों में नहीं बन सकता।" आप उन्हें अब यही रहने दे महात्मा जी। बात पूरी भी न हो पाई थी कि गोस्वामी जी ने उसे झटके से काट दिया और उत्तेजित स्वर में बोले ....."क्या तुम चाहते हो कि मैं अथवा अपनी पत्नी के सुख के लिए समाज की आस्था को अधर में ही लटका दूँ? यह असंभव है टोडर।" टोडर बोले क्षमा करें महात्मा जी किंतु इससे लोगों की आस्था क्यों बिखरगी? बल्लभ गोस्वामी की हर-गृहस्थी उनके साथ रहती थी फिर भी उन्होंने मोक्ष लाभ किया।" तुलसी ने मीठी झिड़की देते हुए कहा ....."तुम समझते क्यों नहीं हो टोडर, आज का समय वल्लभाचार्य जी के दिनों जैसा नहीं है। कबीर दास जी वाला समय भी बीत गया। यह घोर कलिकाल है। नैतिकता का इतना ह्रास हो गया है कि उसे यदि एक स्तर तक उठाए ना रखा जाएगा तो फिर सारा संसार अनैतिकता की लपेट में आए बिना कदापि न सकेगा।" टोडर चुप हो गए। राजा भगत ने इस बार तुलसी-रत्नावली का मेल कराने के लिए पूरा षड्यंत्र रचा था। उन्होंने पंडित गंगाराम, टोडर, यहां तक कि कैलाश कवि को भी, अपने पक्ष में कर लिया था। गंगाराम आए उन्होंने कहा। कैलाश आए उन्होंने कहा। मठ में रहने वाले शिष्यों ने भी कहा..... "माताजी परम विदुषी हैं, उनके यहां रहने से हमारे अध्ययन में बड़ी सहायता मिलेगी।"

तुलसी सुनते, ऊपर से विरोध भी करते परंतु उनका मन कहता की रत्नावली को पास रख कर यदि अपना ध्यान साधो तो अधिक सुगम रहेगा। 'काम विकार कभी न कभी मुझे सता तो जाता ही है उसे कहीं अच्छा है कि मेरा यह विकार धर्म सम्मत होकर ही शांत रहे।" मन का हाला-डोला उन्हें तरह तरह से मथित करने लगा। एक दिन नाथू नाई जब उनके बाल बनाने आया तो उसी समय मठ के द्वार पर रत्नावली जी की पालकी भी आ लगी। रत्नावली जी पालकी से उतरकर ऊपर चली गई। नाथू गोसाई जी की सेवा में पहुंचा। उनके चरणों में ढीका देकर उसने अपनी किस्वत से उस्तरा और पत्थर निकालकर उस्तरे को पैना करना शुरू किया। एक भृत्य ने गोसाईं जी को पंडित गंगाराम के घर से माताजी के लौट आने का समाचार दिया। तुलसीदास के चेहरे पर संतोष की आभा चमकी। वे वोले....."सरवन उनसे बराबर पूछताछ करते रहना। उनकी सेवा में कोई कमी न आए। नाथू पानी की कटोरी लेकर गोस्वामी जी के पास आते हुए बोला ....."माताजी आ गई सरकार, यह बड़ा सुभ भया।" तुलसीदास चुप रहे। उन्हें भी उस समय सुख का अनुभव हो रहा था। गोसाईं जी की ठोड़ी को पानी से तर करके मींजते हुए नाथू ने फिर अपना राग अलापा ....." यह दुनिया वाले बड़े अजिब होते हैं महाराज। कलयुग में सबका मन काला हो गया है।" तुलसी आंखें मींचे मौन बैठे सुख अनुभव करते रहे। नाथू ने बात को फिर आगे बढ़ाया ....."जबसे माताजी काशी आई हैं तब से रोज लोग-बाग हमसे पूछते हैं कि नाथू माता जी अब क्या यहीं रहेंगी? अब हम क्या कह सरकार जी? अरे माताजी यहाँ रहे चाहे न रहे भला तुम्हारे बाप का क्या जाता है। बड़ी हवेली के गोसाईं महाराज भी तो गृहस्थ हैं पर नहीं उनको कोई कुछ न कहेगा। आपके लिए लोग रोक-टोक करते हैं। कहते हैं, चार दिन की चांदनी फिर अंधेरा पाख है। अब ये भी तपस्या छोड़कर भोग -विलास में।"

तुलसीदास के मन में संतोष और सुख का महल बालू की दीवार-सा ढह पड़ा। वे उत्तेजित हो गए, बोले इस प्रसंग को अब यही पर समाप्त कर दो नत्थू। सयाना नत्थू गोस्वामी जी का रुख देख कर सहमकर चुपचाप अपने काम में लग गया। तुलसीदास की मनोलोक में अँधड़ उठने लगे। कभी अपने ऊपर, कभी दुनिया पर और कभी रत्नावली तथा राजा पर क्रोध आता कि वे उनकी शांति भंग करने के लिए यहाँ क्यों आए। हजामत बनती रही, सिर और गालों पर उस्तरा चलता रहा, बार-बार पानी मींजा जाता रहा पर तुलसीदास का मन इन सब बाहरी क्रियाओं से अलिप्त होकर अपनी करुणा से आप ही विलगीत होने लगा। मन जब अपनी विकलता को सह न पाया तो अपनी आदत के अनुसार राम जी के चरणों में शांति पाने के लिए दौड़ पड़ा--"हे दीनबंधु सुखसिंधु कृपाकर, कारुणीक रघुराई! सुनिये नाथ, मेरा मन तिविध ताप से जल रहा है। वह बौरा गया है। तभी योगाभ्यास करता है तो कभी वह शठ भोग-विलास में फँस जाता है। वह कभी कठोर और कभी दयावान बन जाता है। कभी दीन, कभी मूर्ख-कंगाल और कभी घमंडी राजा बन जाता है। कभी पाखंडी बनता है और कभी ज्ञानी। हे देव मेरे मन को यह संसार विविध प्रकार से सता रहा है। कभी धन का लालच सताता है, तभी शत्रुभय सताता है, और कभी जगत को नारीमय देखने लगता है। मैं अपनी मन से बड़ा ही दुखी हूँ रघुनाथ। संयम, जप, तप, नियम, धर्म, व्रत आदि सारी औषधियां करके थक चुका। किन्तु वह मेरे काबू में नहीं आ रहा है। कृपा करके उसे निरोगी बनाइए। अपने चरणों की अटल भक्ति देकर उसे शांत कीजिए नाथ। मैं अब बहुत-बहुत तप चुका हूँ।" बंद आंखों से आंसू टपक ने लगे।

नाथू ने जब यह देखा तो अपना उस्तरा रोक दिया। उसके उस्तरे और हाथ का स्पर्श हटते ही तुलसीदास बाहरी होश में आ गए। भरी हुई आंखें खोलकर एक बार देखा, फिर पास रखे हुए अंगोछे से आँखें पोंछकर बोले....." तुम अपना काम करो नत्थू, मेरा मन तो राम बावला है, कभी हंसता है कभी रोता है।" नथू जब अपना काम करके जाने लगा तो तुलसीदास बोले ....."अब जो कोई तुझसे पूछे तो कह देना माताजी अपने मोहवश चार दिन के लिए आई हैं, शीघ्र ही चली जायेंगी।" नत्थू बोला काहे महाराज, रहै ना। दो ही दिनों में मठ के सारे लोग उनकी बढ़ाई करने लगे। गोसाईं लोग तो घिरस्तास्रमी होते ही हैं। तुलसीदास बोले ....."मैं दूसरे गोसाईयों की तरह अनीति की चाल कदापि नहीं चल सकता। मैंने गृहस्थाश्रम का त्याग किया सो किया।" उनके चेहरे पर हठ-भरी अहंता दमक उठी। थोड़ी देर बाद उन्होंने नौकर को भुलाकर रत्नावली जी को कहलाया की वे शीघ्र राजापुर लौट जाएँ। रत्नावली ने उसी दास के द्वारा कहलाया कि वे उनसे मिलना चाहती हैं। एक बार तुलसी का जी हुआ कि मना कर दें फिर कहते-कहते थम गए और कहा....." भेज दो।कोठरी का पर्दा गिरा दो और उनके बैठने के लिए बाहर आसन भी बिछा दो।"

रत्नावली आई; अपने और पति देव के बीच में टंगे हुए पर्दे को देखा, सिर झुका खड़ी हो गई; पल भर बाद हल्के से खारा, धीमे स्वर में कहा...." जय सियाराम।"

"जय सियाराम। बाहर आसन बिछा होगा, विराजो।"

"पंडित गंगाराम जी के घर पर मैंने आपके द्वारा रचित रामचरितमानस का परायण किया था। मैंने उसे बाल्मीकि जी की कीर्ति से श्रेष्ठ भक्ति-प्रदायक ग्रंथ पाया। तुलसी को सुनकर संतोष हुआ। वोले आदिकवि के परम पावन ग्रंथ से उसकी तुलना न करो देवी। वैसे जानकर संतुष्ट हुआ कि तुमने यह ग्रंथ पढ़ लिया।" रामचरित्र मानस की एक प्रति सिघ्र ही तुम्हारे पास पहुग जाएगी। टोडर प्रतिलिपियाँ कराने की व्यवस्था कर रहे हैं। रत्नावली की आंखें बरस पड़ी। कुछ देर रुक कर तुलसी गोसाईं ने पूछा ....."गई?" रुदन कंपित स्वर में रत्नाकर बोली जा रही हूँ। रो रही हो रत्ना। संतोष के आंसू हैं। अब न बहाओ देवी, नहीं तो मेरे मन का धैर्य और संतोष बँट जाएगा। सेवक धर्म कठिन होता है।" कहकर गुसाईं जी ने एक गहरी ठंडी सांस ढील दी। "जाती हूँ। एक भिक्षा और माँग लूँ?" माँगो। मेरी मृत्यु से पहले एक बार मुझे अपना श्रीमुख लिखलाने की कृपा करें।" ....."वचन देता हूँ आऊंगा।" यहीं उपन्यास समाप्त होता है

मानस का हंस उपन्यास के कुछ महत्वपूर्ण बिंदु

मानस का हंस तुलसीदास के जीवन पर आधारित उपन्यास है। इस उपन्यास में तुलसीदास का अंतर्द्वंद, तात्कालिक समाज की मन:स्थिति रत्नावली की त्यागमयी मूर्ति के दर्शन होते हैं। इसमें तुलसीदास की राम भक्ति के प्रतिस्ठापित रुप के दर्शन होते हैं। उनके हृदय में रत्नावली के प्रति स्नेह के साथ उसके परित्याग का पश्चाताप भी है। लोक कल्याण के लिए भी बैरागी जीवन का अनुसरण करते हैं। रत्नावली तपश्विनी भारतीय नारी की भाँति उनका साथ देती है। वह प्रबुद्ध व तर्कशीला है। अमृतलाल नागर जी ने तुलसीदास जैसे असाधारण राम भक्त के हृदय में इस स्थित भक्ति का प्रबल भाव उनके व्यक्तित्व में आरंभ से ही ढूंढा व उस भाव को लौकिक प्रणय व रति भाव का उदात्तीकरण स्वीकार किया। अमृतलाल नागर जी ने तुलसी के काव्य में मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ व विशिष्ट मानसिक स्थितियों को पकड़ने व समझने का प्रयास किया। तुलसी का जीवन चरित्र इस कौशल से नागर जी ने प्रस्तुत किया कि यह एक कालजयी उपन्यास बन गया। नागर जी ने पात्रों का समाजशास्त्रीय, ऐतिहासिक, व कहीं कहीं स्वच्छंद विश्लेषण किया। तुलसीदास के जीवन में मोहिनी प्रसंग का संयोजनाओं अंध श्रद्धालुओं को अनुचित दुस्साहस लग सकता है। या तुलसी के आध्यात्मिक अनुभवों को श्रद्धा के साथ अंकित कर नागर जी इन दोनों प्रकार के प्रतिवादों से विचलित नहीं होते। वस्तुतः तुलसी और भारतीय परंपरा में अदम्य श्रद्धा व तार्किक दृष्टिकोण इसउपन्यास के केंद्र में कार्य करता है। जिससे अद्भुद साम्म नागर जी बनाए रखते हैं। तुलसी के भीतर

राम काम का द्वन्द्व भी इसी का उदाहरण है। राम काम काम जो भयानक द्विज उनके भीतर चलता है उससे लहुलुहान होते हुए भी वे राम के प्रति अपने को सर्वस्व भाव से समर्पित करने में सफल हो जाते हैं। मानस का हंस अपने परिवेश में तत्कालीन युग का महाख्यान है। जिसमें भारतीयता की असल खोज की जा सकती है। यह पहचान काल अथवा युग से परिवर्तित, समग्र रूप में भारतीय आत्मा की खोज है। यह जीवनी प्रधान कालजयी कृति आधुनिकता और परंपरा के मकांचन योग का सुंदर उदाहरण है जिसे भारतीय अस्मिता की पहचान कहा जा सकता है।

डॉ0 नगेंद्र कहते हैं ....."हिंदी कथा साहित्य में भले ही प्रेमचंद कथा सम्राट माने जाते हैं लेकिन उनके गोदान की टक्कर का कोई कालजयी उपन्यास अगर कभी ढूँढा जाएगा तो समीक्षक निश्चय ही 'मानस का हंस' को स्वीकार करेंगे। जिस महाकवि तुलसीदास ने विश्व साहित्य को कालजयी रचना के रूप में 'रामचरित्रमानस' जैसा महाकाव्य दिया है, उन्हीं को कथाकार अमृतलाल नागर ने अपनी इस कालजयी उपन्यास 'मानक हंस' में अमृत बना दिया। व्यक्ति की सत्ता समाज से व समाज का अस्तित्व व्यक्ति से है। नागर जी के उपन्यासों का मूल स्वर यही है। मानस का हंस मे भी वे व्यक्ति के एकांत महत्त्व को अस्वीकार करते हैं। "टूटी झोपड़ियों के बीच में अकेले महल की कोई शोभा नहीं होती है वह अपनी सारी भव्यता कलात्मकता में क्रूर और गँवार लगता है। मानस का हंस पृ0 374। नागर जी की यह टिप्पणी समाजवादी व्यवस्था के प्रति अनेक दृढ़ आग्रह को दिखाती है।

तुलसी के लिए मानव धर्म सर्वोपरि है। तुलसी का जीवन संघर्षों की आँच में तपकर सोने सा निखरा है। किंतु यह आसान न था। कई बार वो टूटते हैं। यहां तक कि अंतर्द्वंद्व के चरम पर तुलसी आत्महत्या जैसा विचार भी मन में लाते हैं, परंतु पुनः आस्था आशा की विजय होती है। तुलसी सही मायने में आस्था की सजीव मूर्ति बन जाते हैं। तुलसी की साधारण मानव से असाधारण संत होने दीर्घ व विषम यात्रा में जीवन के कई रहस्य छिपे हैं जो इस उपन्यास में दर्शाया गया है।

मानस का हंस के स्त्री पात्र बेहद महत्वपूर्ण हैं। ये स्त्रियां विवेकी हैं, तार्किक हैं, स्वाभिमानी हैं। बावजूद इसके प्रायः पुरुषों की काम भावना को भड़काने का काम करती हैं। तुलसी की टिप्पणी है ....."ढोल गंवार शूद्र पशु नारी सकल ताडन के अधिकारी।" इस पर रत्नावली सवाल उठाती हैं। बहरहाल स्त्रियों के प्रति तुलसी के मन में तब तक कोई दूर्भावना नहीं आती है जब तक वह सीता की तरह चरित्रवान हैं। स्वयं राम काम के भीषण द्वन्दों से डूबते उभरते तुलसी के मन में काम भावना को भड़काने वाली स्त्रियों के लिए आदर नहीं है। मोहिनी के प्रति आशक्ति और आकर्षण व पत्नी रत्नावली का पति की ओर आशक्ति और काम लिसा के प्रति तिरस्कार व्यक्त करता यह कथन..... "नारी भले ही काम वस माता क्यों न बने किंतु माता बनकर वह एक जगह निष्काम भी हो जाती है। और पुरुष पिता बनकर भी अपना दायित्व अनुभव नहीं करता वह नीरे चाम लोभी है, जीवन में रमे राम का नहीं। यही सोच तुलसीदास को राम के करीब ले जाते हैं जिसके लिए वे हमेशा कृतज्ञ रहे तुलसी के अंदर मानवता वादी दृष्टिकोण देखने को मिलता है। तुलसी सगुण भक्त कवि थे। राम के आनन्य उपासक होने के कारण अन्य धर्मावलंबियों के प्रति उनकी दृष्टि आदरपूर्ण थी। उपन्यास को आधुनिक संदर्भ से जोड़कर नागर जी ने अत्यंत निपुणता का परिचय दिया है। तुलसी पीड़ित, शोषित लोगों को संगठित कर जन समुदाय की पीड़ा हरने की ओर प्रेरित किया है । व स्वयं शक्ति अर्जित की। इस तरह तुलसी का 'मानस' लोक कल्याणकारी नायक की जीवन गाथा है। जिस का मूल स्वर आम जनता का अपना स्वर है।